वीर संवत २४९२, माघ कृष्णपक्ष ८, रविवार

दि.१३-२-१९६६, गाथा ४, ५, प्रवचन नं.-२५

यह 'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है। पहले के पुराने पंडित हैं। उन्होंने शास्त्र के अनुसार बनाया है। उसकी चौथी ढाल का चौथा श्लोक चलता है। हिन्दी में ९९ पन्ना है। ९९ को क्या कहते हैं ? ९९। देखो ! क्या कहा ? पहले दर्शन की व्याख्या कही। सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान सच्चा होता नहीं और सम्यग्ज्ञान के बिना व्रत, तप चारित्र कभी कुछ सच्चा होता नहीं, झूठा है। पहले सम्यग्दर्शन की व्याख्या की। पहले आत्मा की प्रतीत अंतर में ऐसी लेनी चाहिए कि यह आत्मा, परद्रव्य से बिलकुल भिन्न-जुदा है। पर और आत्मा एक है ऐसी श्रद्धा करना। वह तो मिथ्यात्व है। समझ में आया ? शरीर, वाणी, यह जड़ मन, कर्म और आत्मा सब एक है ऐसी मान्यता तो अभेददृष्टि जड़ के साथ एक बुद्धि है। उसका नाम मिथ्यादृष्टि है। जड़ की क्रिया जड़ से होती है, आत्मा माने कि अपने से होती है तो जड़ और आत्मा दोनों को एक माना। आत्मा पर से भिन्न है - ऐसी दृष्टि हुई नहि। वह तो शरीर मे रूक गई। शरीर की क्रिया ऐसी हो, ऐसी हो, ऐसी हो। ये हमारे से होती है और उसमें हम हैं। शरीर की जड़ क्रिया में हम हैं, ऐसा माननेवाला शरीर से आत्मा भिन्न मानता नहीं। भिन्न माने बिना उसका सम्यग्दर्शन सम्यक्-सत्य नहीं होता। वह तो असत्यदृष्टि है।

मुमुक्षु :- जीव प्रेरणा तो करता है।

उत्तर :- कौन प्रेरणा करता है ? धूल में भी नहीं कर सकता। ये पक्षघात होता है। पक्षघात होता है, तब शरीर में आत्मा तो है। आत्मा देह का क्या कर सकता है ? मिट्टी है, यह तो जड़ अजीवतत्त्व है। भगवान ने तो कहा है कि, अजीवतत्त्व का द्रव्य-गुण-पर्याय अजीव में है। अजीवतत्त्व का द्रव्य-गुण-पर्याय... द्रव्य नाम वस्तु, गुण नाम शक्ति, पर्याय नाम अवस्था-हालत। जड़ का द्रव्य-गुण-पर्याय जड़ में है। वह अपने से है ऐसा मानना वह तो

जड़ को अपना आत्मा माना। वह दृष्टि तो मिथ्यात्व अज्ञान है; और पुण्य-पाप का विकल्प जो शुभ-अशुभभाव होता है, वह भी आस्रव है, वह भी आत्मा के स्वभाव से पर है। उसको भी अपना मानना वह मिथ्यादृष्टि है। उसे सम्यग्दर्शन है नहीं। सम्यग्दर्शन बिना उसे सत्यता प्रतीत होती नहीं।

परद्रव्य से भिन्न आत्मरुचि भला है, पहले आ गया न ? भगवान आत्मा परद्रव्य-शरीर, वाणी, कर्म और पुण्य-पाप का भाव, उससे भिन्न अपना अंतर में निर्विकल्प - राग के अवलंबन बिना पूर्ण स्वरूप की अंतर में प्रतीत-श्रद्धा, विश्वास, भान करके होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान सच्चा होता नहीं, उसका वर्तन भी सच्चा होता नहीं। आचरण-वर्तन, अनुष्ठान उसका सच्चा नहीं होता। सब झूठा वर्तन है।

कहते हैं कि, पहले सम्यग्दर्शन की व्याख्या कह गये है। अब उसके साथ सम्यग्ज्ञान (होता है), उसकी बात चौथी ढाल में चलती है। ज्ञान के पाँच भेद हैं। ज्ञान आत्मा का गुण है। उसकी पाँच भेद-पर्याय, पर्याय-अवस्था है। आत्मा त्रिकाल है, उसमें ज्ञानशक्ति-गुण त्रिकाल है। उसकी पाँच पर्याय-अवस्था है। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल - ये पाँच आ गया। ये पाँच ज्ञान हैं ये ज्ञान ही आत्मा को सुख का कारण है - ऐसा चौथी (गाथा में) कहा, देखो !

सकल द्रव्यके गुन अनंत, परजाय अनंता;
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता।
ज्ञान समान न आन जगतमें सुखको कारन;
इह परमामृत जन्मजरामृति रोग निवारन।।४।।

कितनी सादी हिन्दी भाषा ! परन्तु समझने की दरकार नहीं। सादी कहते हैं ? सादी... सादी सरल। हिन्दी में शंका हो जाती है कि, क्या हिन्दी है ? बहुत सरल भाषा है। सादी। क्या कहा ? देखो ! '**ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारन;...**' ये पाँच ज्ञान कहे। इन पाँच ज्ञान में वास्तव में तो मति, श्रुत और केवल। तीन कारण हैं, भाई ! अवधि, मन:पर्यय तो एक

ऋद्धि है।

वास्तव में तो अन्तर में मति-श्रुतज्ञान आत्मा में पर का लक्ष्य छोडकर, शास्त्रज्ञान का भी लक्ष्य छोडकर, पुण्य-पाप के विकल्प का राग का भी लक्ष्य छोडकर ज्ञान का ज्ञान करना, अपने ज्ञानस्वरूप को स्वज्ञेय बनाकर अन्तरज्ञान करना वह पहले मतिज्ञान है। समझ में आया ? वह श्रुतज्ञान (है)। शास्त्र की भाषा है वह ज्ञान नहीं है, वह परवस्तु है। अपना आत्मा... उतना कहा न ? और पीछे भी आयेगा। समझ में आया ? पीछे आयेगा। '**आपो लख लीजे**' छठ्ठी में आयेगा, छठ्ठी गाथा में आयेगा। '**संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लघ लिजे।**' छठ्ठी में ऐसा आयेगा। आपो अर्थात् आत्मा।

भगवान आत्मा ज्ञान का समुद्र है। आहा..हा... ! इस ज्ञान का ज्ञान करना, ज्ञान का ज्ञान करना, उसका स्वसंवेदन में अपना ज्ञान का जानना, वेदन आना, उसका नाम मति और श्रुतज्ञान पहला कहते हैं। इस मति-श्रुतज्ञान के समान जगत में सुख का कोई कारण है नहीं। समझ में आया ? शरीर, वाणी, मन नहीं; पुण्य-पाप का शुभभाव - दया, दान, व्रत भाव हो, वह भी सुख कारण नहीं।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- धूल में सुख का फल है। क्या है ? पुण्य बँधे तो उससे पैसा मिले, धूल में सुख है ? ए..ई... ! पैसा मिले, दस-दस लाख का बडा मकान ! उसमें पंखे, धूल में भी सुख नहीं; अज्ञान है, दुःख है। पर मेरा है, यह मेरा है (मानता है वह) मूढ है। क्या वह चीज़ तेरी है ? तेरी हो तो दूर क्यों रहे ? तेरी हो तो तेरे आत्मा के साथ अन्दर घूस जाये।

मुमुक्षु :- मेरापना तो अन्दर में घूस गया है।

उत्तर :- घूस नहीं गया है, उसकी ममता रही है, अन्तर में नहीं घूस गई है। पर्याय में ममता रही है। वस्तु चिदानन्द भगवान आत्मा में तो ममता के परिणाम भी अन्दर नहीं घूस गये हैं। पर्याय में-अवस्था में विकार है। वह विकार भी आत्मा में नहीं है, यहाँ तो यह बताते है। परवस्तु तो नहीं, परन्तु विकल्प जो ममता है, वह भी चैतन्य में नहीं। ऐसी अन्दर में श्रद्धा करके आत्मा का ज्ञान करना। ममता का नहीं, पर का नहीं - ऐसा कहते हैं। देखो न ! उसने

कभी स्वयं की सम्हाल की नहीं। मूढ होकर अनंतर बार (भटका है)। पागल कहेंगे, अभी कहेंगे। करोडो भव में तप किया, व्रत लिया, शास्त्र पढ लिया लेकिन अपना आत्मा अन्दर ज्ञानस्वरूपी चैतन्य बिराजमान है उस ज्ञान का ज्ञान होने के अलावा कोई सुख का कारण है नहीं, लेकिन उसका ज्ञान कभी किया नहीं। समझ में आया ?

'**इहि परमामृत...**' इहि परमामृत। देखो ! यह तो परम अमृत है। आ..हा..हा...! क्या ? आत्मा चैतन्यसूर्य भगवान है, उसका अन्दर में ज्ञान (होना अर्थात्) यह आत्मा ज्ञान(स्वरूप) है - ऐसा अन्तर में भान करना, यह परम अमृत है, परम अमृत है। इसके अलावा जगत में कोई अमृत है नहीं। आहा..हा...! '**जन्मजरामृति रोग निवारन।**' सम्यक् चैतन्य का अंतरज्ञान, आत्मा में अंतरज्ञान करना वह जन्म-जरा-मरण रोग का निवारण कारण है। समझ में आया ?

केवलज्ञान की बात की, उसकी भी श्रद्धा करनी चाहिए। केवलज्ञान एक समय में तीनकाल तीनलोक को देखता है। देखो ! भावार्थ है न ? भावार्थ। ९८ (पन्ना)। '**(१) जो ज्ञान तीनकाल और तीनलोकवर्ती सर्व पदार्थो (अनंतधर्मात्मक...)**' धर्म अर्थात् स्वभाव। अनंत स्वभाव स्वरूप '**(सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को) प्रत्येक समय में...**' प्रत्येक समय में केवलज्ञान तीनकाल तीनलोक को देखते हैं। एक समय में !'**यथास्थित,..**' जैसा स्व और पर पदार्थ है ऐसा भगवान ज्ञान-केवलज्ञान एक समय में यथास्थित, यथास्थित (अर्थात्) जैसा है, जैसा है (वैसा जानते है)। तीनकाल तीनलोक के पदार्थ, द्रव्य-गुण-पर्याय, स्व-पर यथास्थित जैसे है (वैसे)। '**परिपूर्णरूप से...**' ओ..हो...! केवलज्ञान की अवस्था परिपूर्ण स्पष्ट (जानती है)। अन्दर में 'प्रकट' शब्द पडा है न ? '**स्पष्ट और एकसाथ जानता है...**' आ..हा...! अभी तो इसी में तकरार है न ? कि, केवलज्ञान जैसा निमित्त मिले वैसी पर्याय होती है, तब जाने।

मुमुक्षु :- ... निश्चित (पक्का) नहीं है।

उत्तर :- निश्चित नहीं हो तो केवलज्ञान कैसा ? केवलज्ञान में तो एक समय में तीनकाल तीनलोक में जहाँ-जहाँ जो अवस्था, ऊलटी अवस्था में निमित्त क्या है, क्षेत्र में क्या है, सब

भगवान पहले समय में तीनकाल देखते हैं। क्यों सेठ, बराबर है ? एकसाथ देखते-जानते हैं। अरिहंत का ज्ञान सैकेण्ड के असंख्य भाग में तीनकाल तीनलोक (जानता है)। ओ..हो...! ऐसे ज्ञान का जिसे निश्चय हो, ऐसे केवलज्ञान का जिसे निश्चय हो, उसे परपदार्थ की अवस्था की कर्ताबुद्धि रहती नहीं। समझ में आया ? मैं पर का कर दूँ, भला कर दूँ, बिगाड दूँ, पर से मेरा सुधार हो जाये - ऐसी बद्धि (रहती नहीं)। सर्वज्ञ पर्याय ने जैसा देखा है, ऐसा होता है - ऐसा माननेवाले को, सम्यग्ज्ञानी को मैं पर का कर दूँ और पर से मेरे में (कुछ) हो - ऐसी बुद्धि नष्ट हो जाती है। कहो, समझ में आया ?

वह आता है न ? 'भैया भगवतीदास' में। भैया ! 'जो जो देखी...' उसे बहुत याद रहता है, बहुत कंठस्थ है। बुद्धि बहुत है, हाँ ! बहुत कंठस्थ करता है। '**जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होंसी वीरा रे, अनहोनी कबहूँ न होसे, काहे होत अधीरा**' 'भैया भगवतीदास', २५० वर्ष पहले हुए हैं। एक 'ब्रह्मविलास' पुस्तक है, उसमें लिखा है। उन्होंने 'ब्रह्मविलास' नाम का पुस्तक बनाया है, उसमें लिखा है। '**जो जो देखी वीतराग ने,...**' वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनको एक समय में, एक सैकण्ड का असंख्य भाग, हाँ ! एक समय, उसमें तीनकाल तीनलोक जाना। '**जो जो देखी वीतराग ने, ते ते होंसी वीरा**' हे वीर ! भगवान ने देखा है, वैसी पर्याय जगत में होगी। 'अनहोनी कबहू न होसी, काहे होत अधीरा' अरे..! मैंने ऐसा नहीं किया तो ऐसा हुआ। अरे..! क्या है ? जहाँ-जहाँ जड़ और चैतन्य की जिस समय जो अवस्था होनेवाली है व होगी - ऐसा में जाननेवाला हूँ, ऐसा निर्णय किये बिना सम्यक् केवलज्ञान का निर्णय उसे है नहीं। समझ में आया ? आहा..!

धर्मी... धर्मी कहते हैं, लेकिन धर्म (क्या) ? आत्मा का धर्म ज्ञान और इस ज्ञान धर्म की पर्याय केवलज्ञान। केवलज्ञान पर्याय, और एक समय की पर्याय में भगवान तीनकाल तीनलोक देखते हैं। भगवान के ज्ञान में आगे-पीछे है नहीं। कहो, बराबर है ? भाई ! कठिन बात है। अरिहंत, अभी तो णमो अरिहंताणं पद की खबर नहीं है कि, अरिहंत का केवलज्ञान एक समय में तीनकाल तीनलोक देखते हैं। उसमें कोई परिवर्तन नहीं, तीनकाल में होता नहीं। ऐसे केवलज्ञान का अपने मति-श्रुतज्ञान में जो निश्चय करता है, उसे सुख आता है - ऐसा कहते हैं।

केवलज्ञान पूर्ण अवस्था है और उसका अवयव (मति-श्रुत-ज्ञान है)। केवलज्ञान अवयवी है, पूरी पूर्ण चीज है। और मति-श्रुतज्ञान उसका अवयव है। अवयव यानी अंश। जैसे सारा शरीर अवयवी है, हाथ-पैर आदि अवयव हैं। ऐसे केवलज्ञान एक समय की अवस्था तीनकाल तीनलोक देखे, (वह) अवयवी अर्थात् पूरी चीज़ है। मति-श्रुतज्ञान उसका अवयव है. सम्यग्दर्शन को... यहाँ सम्यग्दर्शन के बाद की बात ली है न ? सम्यग्दृष्टि को मति-श्रुतज्ञान, केवलज्ञान का अवयव अन्तर में ज्ञान से ज्ञान का भान होकर (प्रकट) हुआ है तो वह भी ऐसा जानता है कि, जब जैसा होनेवाला है, वैसा होगा; मैं किसी का कर्ता नहीं, मैं किसी के पास से अपनी शांति लेता नहीं। समझ में आया ? आहा..हा...! ये व्यापार और धंधा होशियार हो वह कर सकता है कि नहीं ? होंशियार क्या है ?

यहाँ तो कहते हैं, भैया ! जिसे केवलज्ञान का निश्चय हुआ, उसे मति-श्रुतज्ञान अन्तर में, आत्मज्ञान में से प्रकट हुआ। ऐसे ज्ञान में केवलज्ञानी जैसा देखते हैं, वैसा मति-श्रुतज्ञान (स्व) और रागादि पर हैं, ऐसा जानता है, जानता है। ऐसे ज्ञान समान जगत में अन्य कोई सुख का कारण नहीं है। समझ में आया ? देखो ! सुख का कारण केवलज्ञान। केवलज्ञान का अंश मति और श्रुत, ये तीनों सुख के कारण हैं। इसके अलावा कोई सुख का कारण है नहीं।

'**(२) द्रव्य, गुण और पर्यायों को केवली भगवान जानते हैं,...**' भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर अनन्त पदार्थ, उसके अनन्त गुण और उसकी अनन्त अवस्था अर्थात् पर्याय (को जानते हैं)। '**किन्तु उनके अपेक्षित धर्मो को नहीं जान सकते...**' वर्तमान में ऐसी कुछ बात चलती है न ? भगवान सबकुछ जाने, सबका जानते हैं। उसका कुछ अपेक्षित नहीं जानते हैं, ऐसा है नहीं। नहीं जाने, ऐसा भगवान में होता ही नहीं। सब सब (जानते हैं)। तीनकाल तीनलोक के अनन्तगुना होता, अनन्तगुना होता तो भी केवलज्ञानी जानते। समझ में आया ? '**उनके अपेक्षित धर्मों को नहीं जान सकते-ऐसा मानना असत्य है।**' अपेक्षित अर्थात् ? ये छोटा-बड़ा, ऊंचा-नीचा कितना है, ऐसे धर्म हैं, वे सब अपेक्षित धर्म हैं, ये सब भगवान तो जानते हैं।

'**तथा वे अनन्त को अथवा मात्र अपने आत्मा को ही जानता हैं,...**' क्या कहते हैं ?

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि, अनन्त को जाने, सर्व को नहीं जाने। भगवान सर्वज्ञ अनन्त को जाने, सर्व को नहीं जाने। सर्व को जाने तो वहाँ अन्त आ जायेगा। आहा..हा...! ऐसा है नहीं। अबी केवलज्ञान का निश्चय नहीं है, मति-श्रुतज्ञान का ठिकाना नहीं उसे दर्शन नहीं, ज्ञान नहीं तो चारित्र तो होता ही नहीं। **'किन्तु सर्व को नहीं जानते-ऐसा मानना भी न्यायविरुद्ध है।'** भगवान तो तीनकाल तीनलोक को जानते हैं। (कोई) कहता है कि, सब को जाने तो ज्ञान में सब अनन्त आ गया, तो अनन्ता का ज्ञान हुआ, तो वहाँ अन्त आ गया या नहीं ? कहाँ से अन्त आया ? अनन्त को अनन्त जानते हैं। ऐसा मति-श्रुतज्ञान में निर्णय होता है। पहले सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में गृहस्थाश्रम में हो तो भी सम्यग्दर्शन में, मति-श्रुतज्ञान में ऐसा निश्चय होता है। इस ज्ञान के समान कोई सुख नहीं। ये ज्ञान, बाकी कोई बातें करने की यहाँ बात नहीं है। समझ में आया ?

'केवलि भगवान सर्वज्ञ होने से अनेकान्तरूप...' अनेकान्त अर्थात् अनन्त धर्म है (उन) सबको। **'प्रत्येक वस्तु को प्रत्यक्ष जानते हैं।'** एक समय में तीनकाल तीनलोक को जानते हैं। केवलज्ञानी का मति-श्रुतज्ञानी पुत्र है। लघुनन्दन कहा या नहीं ? कहाँ कहा है ? भैया !' भेदविज्ञान जग्यो जिनके घट।' 'बनारसीदास' में आता है या नहीं ? समझ में आया ? 'बनारसीदास' में लघुनंदन आता है। 'ते जगमांही जिनेश्वर के लघुनंदन।' 'बनारसीदास' हुए न ? 'समयसार नाटक' (लिखा है)। सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि जिनेश्वर के लघुनंदन हैं, छोटे पुत्र है। बड़े पुत्र संत, गणधर आदि आत्मानन्द में बहुत झूलनेवाला। समकिती भी भगवान के लघुनंदन हैं, छोटे पुत्र हैं। ओ..हो..हो...! समझ में आया ? 'स्वार्थ के साचे' ऐसा आता है न ?

'भेदविज्ञान जग्यो जिनके घट... भेद विज्ञान जग्यो जिन के घट, शीतल चीत भयो जिम चंदन, केली करे शिवमारग मांही, जिनेश्वर के लघुनंदन... जगमांही जिनेश्वर के लघुनंदन' आ..हा...! देखो ! गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि ऐसे होते हैं। समझ में आया ? भेदविज्ञान-राग पुण्य और पर से भिन्न आत्मा (है ऐसी) ग्रंथिभेद होकर 'भेदज्ञान जग्यो जिनके घट, शितल चित्त भयो जिम चंदन' समझ में आया ? मैं तो ज्ञान हूँ। गृहस्थाश्रम में हो, रागादि हो तो भी मैं जाननेवाला हूँ, मैं तो ज्ञान हूँ। गृहस्थाश्रम में हो, रागादि हो तो भी मैं जाननेवाला हूँ, मैं तो

जानन हूँ वही आत्मा हूँ। रागादि आत्मा नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ? उनको लघुनंदन कहा।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- बहुत। गणधरो, ंतों हैं न ! कहा न, बीच में आ गया, आपने सुना नहीं। संतो, मुनियों आत्मज्ञान में मस्त। अतीन्द्रय आनन्द में मस्त झुलनेवाले छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में (झुलनेवाले) भावलिंगी संत बड़े पुत्र हैं, ये लघुपुत्र हैं। सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में रहते हो तो भी लघुनंदन हैं। समझ में आया ? 'बनारसीदास' कहते हैं। 'समयसार नाटक' उन्होंने बनाया है। ये 'समयसार नाटक' है न ? देखो ! (मंगलाचरण में) छठ्ठा श्लोक है।

भेदविज्ञान जग्यो जिन्हके घट,

सीतल चित्त भयो जिम चंदन।

गृहस्थाश्रम में भी देह, वाणी (है, वह) मैं नहीं। दया, दान, व्रत का विकल्प उठता है वह भी राग है, मैं नहीं।

केलि करै सिव मारग में,

जग माहिं जिनेसुरके लघु नंदन।

'बनारसीदास' देखो ! 'समयसार नाटक' (लिखा है)। पहले श्रृंगारी पुरुष थे। श्रृंगारी पुस्तक बहुत बनाये (थे), जब आत्मभान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ तो 'गोमती' नदी में डाल दिया। कल आया है। पुस्तक है या नहीं ? कहाँ है ? यहाँ होवे तो काम आये न। श्रृंगारी पुस्तक बनाये थे न ? पहले श्रृंगारी बहुत थे। बाद में आत्मज्ञान हुआ। संसार में रहने पर भी, स्त्री-पुत्र (होने पर भी) मैं आनन्दस्वरूपी आत्मा हूँ, मैं देह की क्रिया नहीं, जड़ नहीं, राग नहीं। ऐसा भान हुआ तो श्रृंगारी पुस्तक थे न ? (उसे) या... होम (कर दिया)। कल ही आया है, हाँ ! देखो, देखो भैया ! कल ही आया है। देखो, ये 'बनारसीदास' हैं। देखो ! ये पुस्तक समुद्र में डाल दिये। श्रृंगारी पुस्तक बनाये थे (उसे) जाकर (डाल दिया)।

भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने बनाये हुए शास्त्र, सन्तों ने शास्त्र कहे, उसमें आत्मा का

भान हुआ। विरुद्ध शास्त्र जो लिखे थे, (उन्हें) डाल दिया। समझ में आया ? ऐसा कल ही आया है, देखो ! 'दृष्टि बदलते ही महाकवि पंडित बनारसीदासजी ने अपनी विषयवर्धक नवरस रचना गोमती नदी में बहा दी।' ये कल ही आया है। सेठ ! कल आया है, कल। क्या कहते हैं ? 'सन्मति सन्देश' है न ? 'दिल्ही' से निकलता है। समझ में आया ? आहा..हा...! गृहस्थाश्रम में हो लेकिन आत्मा की अन्त प्रतीत हुई तो कहते हैं।

सत्यसरूप सदा जिन्हगै,

प्रगट्यौ अवदात मिथ्यात-निकंदन।

'**सत्यसरूप...**' ज्ञानानन्दस्वरूप का भान। आठ वर्ष की लडकी को भी होता है। भान करे तो। भान करे बिना सौ वर्ष की उम्र में मर जाये। समझ में आया ? '**सत्यसरूप सदा जिन्हकै, प्रगट्यौ अवदात...**' अवदात अर्थात् निर्मल।

सांतदसा तिन्हकी पहिचानि,

करै कर जोरि बनारसि वंदन।

'बनारसीदास' कहते हैं, ऐसा सम्यग्ज्ञानी को मैं वंदन करता हूँ। समझ में आया ? भले गृहस्थाश्रम में हो लेकिन सम्यग्दर्शन और ज्ञान (हुआ है)। शांत... शांत... आत्मा में शांति बड़ी है, ऐसा सम्यग्ज्ञान हुआ तो कहते हैं कि, मैं उनको वंदन करता हूँ। बहुत अच्छा श्लोक बनाया है। 'समयसार नाटक' समझ में आया ?

'**(२) इस संसार में सम्यग्ज्ञान के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है।**' ये सम्यक् मति-श्रुतज्ञान, हाँ ! और केवलज्ञान। दोनों लेने, भाई ! समझ में आया ? सम्यग्दर्शन के बाद जो पाँच ज्ञान की बात कही, (उनमें से) मति-श्रुतज्ञान और केवलज्ञान। केवलज्ञान तो अनन्त आनन्द का कारण है परन्तु मति-श्रुतज्ञान भी सुख का कारण है। क्या हो ? जगत बोलता है तो बोलने दो, होता है तो होने दो, मेरे में क्या है ? मेरा कोई पर के साथ संबंध है नहीं। समझ में आया ? आत्मा ज्ञानस्वरूप का भान करके, अपने ज्ञान में शांति का वेदन करते हैं, उसे जन्म, जरा, मरण का नाश करने का उपाय हाथ लगा है। दूसरे को ज्ञान बिना जन्म-मरण मिटते नहीं। समझ में आया ? अब पाँचवा श्लोक।

ज्ञानी और अज्ञानी के कर्मनाश के विषय में अन्तर

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे;
ज्ञानीके छिनमें, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।
मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायौ;
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।।५।।

अन्वयार्थ :- (अज्ञानी जीवको) (ज्ञान विना) सम्यग्ज्ञान के बिना (कोटि जन्म) करोड़ों जन्मों तक (तप तवैं) तप करने से (जे कर्म) जितने कर्म (झर) नाश होते हैं (ते) उतने कर्म (ज्ञानीके) सम्यग्ज्ञानी जीव के (त्रिगुप्ति तैं) मन, वचन और काय की ओर की प्रवृत्ति को रोकने से (निर्विकल्प शुद्ध स्वभाव से) (छिनमें) क्षणमात्रमें (सहज) सरलतासे (टरैं) नष्ट हो जातै हैं। (यह जीव) (मुनिव्रत) मुनियों के महाव्रतों को (धार) धारण करके (अनन्तबार) अनन्तबार (ग्रीवक) नववें ग्रैवेयक तक (उपजायो) उत्पन्न हुआ, (पै) परन्तु (निज आतम) अपने आत्मा के (ज्ञान विना) ज्ञान बिना (लेश) किंचित्मात्र (सुख) सुख (न पायो) प्राप्त न कर सका।

भावार्थ :- मिथ्यादृष्टि जीव आत्मज्ञान (सम्यग्ज्ञान) के बिना करोडों जन्मो-भवों तक बालतपरूप उद्यम करके जितने कर्मों का नाश करता है उतने कर्मों का नाश सम्यग्ज्ञानी जीव स्वोन्मुख ज्ञातापने के कारण स्वरूपगुप्ति से-क्षणमात्र में सहज ही कर डालता है। यह जीव, मुनि के (द्रव्यलिंगी मुनि के महाव्रतों को धारण करके उनके प्रभाव से नववें ग्रैवेयक तक के विमानों में अनन्तबार उत्पन्न हुआ, परन्तु आत्मा के भेदविज्ञान (सम्यग्ज्ञान अथवा स्वानुभव) के बिना जीव को वहाँ भी लेशमात्र सुख प्राप्त नहीं हुआ।

'**ज्ञानी और अज्ञानी के कर्मनाश के विषय में अन्तर।**' धर्मी-ज्ञान और अज्ञानी के कर्मनाश के विषय में अन्तर हैं।

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे;
ज्ञानीके छिनमें, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।

मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायौ;
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।।५।।

'सहज' पर वजन है। देखो ! नीचे लिया है। नीचे हैं न ? देखो ! अज्ञानी मुनि। क्या है वह ? कमण्डल और पींछी हैं। कितने भव धारण किये हैं, ऐसा लिखते हैं। एक, दो, तीन, चार करते-करते अनन्त (भव किये)। नीचे है न ? आत्मा ज्ञान के भान बिना क्रियाकाण्ड इतनी की। 'कोटी जन्म तप,' यहाँ तो करोड़ भव लिखा है, लेकिन अनन्त भव लेना। समझ में आया ? ऐसे अनन्त भव किये, आत्मज्ञान बिना मुनिव्रत ले लिये। शास्त्रज्ञान किया, अठ्ठावीस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत पाले। वह सब तो विकल्प, राग है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- पंचमकाल में तो...

उत्तर :- पंचमकाल में क्या ? पंचमकाल में क्या कीचड की सुखड़ी होती है ? सुखड़ी नहीं होती ? सुखड़ी। घी, गुड़ और आटा (मिलाकर बनाते हैं)। कोई घी के बदले पानी डालकर सुखड़ी बनाते हैं ? सुखडी.. सुखडी नहीं होती ? आप लोग क्या कहते हैं ? सुखड़ी कहते हैं न ? सुखड़ी में घी, आटा और गुड़ तीन आते हैं, या दूसरी (चीज़) आती है ? ऐसे आत्मा के मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन आते हैं। कोई लाख वर्ष पहले सुखड़ी बनाये तो भी घी, गुड़ और आटा (मिलाकर ही बनती थी और) अभी बनाये तो भी ये तीन (मिलाकर बनाते हैं)। ये तीन की दूसरी चीज हो जाती है ? लाख, करोड वर्ष पहले बनाये तो भी ये है, अभी बनाये तो भी ये है, गरीब बनाये तो भी वही है। भले थोडा घी डाले। लेकिन घी, गुड और आटा की सुखडी बनती है। पंचम काल में दूसरा धर्म और चौथे काल में दूसरा धर्म, ऐसा होता है ? समझ में आया ? सुखडी दूसरी नहीं होती, धर्म दूसरा नहीं होता। समझ में आया ?

कहते हैं, '**कोटि जन्म तप तपैं,...**' देखो ! पहले दृष्टान्त लिया है न ? अनन्तबार मुनपिना लिया और अनन्तबार शास्त्र का पढना भी किया परंतु आत्मज्ञान नहीं किया। आहा..हा... ! देखो ! यह क्या कहते हैं ? 'दौलतरामजी' चौथी ढाल में पाँचवी गाथा में कहते हैं। '**(ज्ञान बिना) सम्यग्ज्ञान के बिना करोडो जन्मों तक...**' करोड़ो भव, करोड़ो भव और

एक-एक भव करोड़-करोड़ पूर्व का। क्या कहते हैं ? एक एक भव करोड़ पूर्व का। बडा आयुष्य होता है न ? करोड़ पूर्व का एक (भव)। करोड़ पूर्व किसे कहते हैं ? वीतराग की बड़ी बात है। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाये। उसे एक पूर्व कहते हैं। सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व ! ऐसे-ऐसे करोड़ पूर्व का भगवान का आयुष्य है। 'सीमंधर' भगवान महाविदेहक्षेत्र में (बिराजते हैं)। ऐसे करोड़ पूर्व का आयुष्य (लेकर) मनुष्य में अनन्तबार आया। करोड़ पूर्व ऐसे करोडों भव। क्या कहते हैं ?

करोडों भव (किये ऐसा कहा उसमें) उपरा-उपर मनुष्यभव आठ मिलते हैं। समझ में आया ? मनुष्यभव भी उपराउपर मिलता है। उपराउपर समझे ? एक के बाद दूसरा। (ऐसे) आठ भव मिलते हैं। आठ भव एकसरीखे मिले, या जैनकूल में अवतार मिले ऐसा भी नहीं। मनुष्यभव आठ उपराउपर मिले। उसमें कोई बार जब जैनकुल में जन्म लिया हो और करोड़ पूर्व का आयुष्य हो, तब करोड़ पूर्व में मास खमण - महिने-महिने के उपवास करने, पंच महाव्रत का पालना, ऐसा एक भव में करोड पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड वर्ष ऐसा आठ वर्ष से त्याग करके करोड पूर्व तप करे। क्रियाकां, व्रत, नियम, तपस्या करोड भव (करे)। करोड़ भव कब आयेंगे ? उपराउपर मनुष्य तो होता नहीं। एक के बाद एक तो थोडे ही होते हैं। इतने-इतने करोड़ भव... देखो !

'**करोडों जन्मों तक तप करने से...**' मुनिपना, व्रत लेने से। अकेले पंच महाव्रत। अन्दर आत्मज्ञान, आनन्द का भान नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं। समझ में आया ? '**तप करने से जितने कर्म नाश होते हैं, उतने कर्म सम्यग्ज्ञानी जीव के...**' करोड़ों भव में, एक-एक भव में करोड़ों वर्ष। समझ में आया ? अज्ञानतप है। आत्मा क्या चीज है - (उसका ज्ञान नहीं)। जड़ का कर्ता नहीं, महाव्रत का राग का विकल्प उठता है वह भी पुण्यबन्ध का कारण (है)। उससे रहित आत्मा का अंतरज्ञान नहीं तो वह सब क्रियाकाण्ड, उसमें करोडों भव में और एक-एक भव में करोड़ों वर्षों में तप करते-करते सूख जाये (उसमें) उसके जितने कर्म खिरते हैं उससे अनन्तगुने कर्म सम्यग्ज्ञानी अन्तर में मनमें से विकल्प का लक्ष्य छोड़कर, अपने आत्मा का ज्ञान करके अन्तर में एकाग्र होता है तो उससे अनन्तगुने कर्म खिर जाते हैं। समझ में आया ? आहा..हा... !

आत्मा वस्तु है स्वभाव के भान बिना अशुद्धता या कर्म टले कैसे ? बारह व्रत है या पंच महाव्रत है या तपस्या है, वह तो शुभराग विकल्प है। शुभराग है (तो) पुण्य बँध जाये, लेकिन निर्जरा हो जाये, धर्म होवे (ऐसा नहीं)। आत्मा अन्दर ज्ञानानन्दस्वरूप एक क्षण भी, एक क्षण मन के विकल्प की रुचि छोडकर अंतरज्ञान में ज्ञान में ज्ञान का एकाग्र होना, ऐसे सम्यग्ज्ञानी एक क्षण में अनन्त कर्म की निर्जरा करते हैं। कहो, समझ में आया ? '**नाश होते हैं।**'

'**उतने कर्म सम्यग्ज्ञानी जीव के मन, वचन और काय की और की प्रवृत्ति को रोकने से...**' अर्थात् सम्यग्ज्ञान में पर की प्रवृत्ति का लक्ष्य छोड़कर, राग का भी लक्ष्य छोड़कर अपने स्वरूप में, ज्ञानानन्द में एकाकार होकर '**निर्विकल्प शुद्ध...**' स्वात्मानुभव (करना)। राग, पुण्य विकल्प से रहित भगवान आत्मा का स्वानुभव '**(छिन में)...**' शुद्ध स्वानुभव। अशुद्ध का अनुभव, पुण्य-पाप का अनुभव तो अनादिकाल का है, वह कोई चीज़ नहीं, कोई धर्म नहीं। पुण्य-पाप का भाव जो शुद्धस्वरूप का अनुभव (होता) है। '**क्षणमात्र में सरलता से...**' इतने शब्द हैं। (अज्ञानी) हठ से इतना करता है, मूल सच्ची निर्जरा होती नहीं। समझ में आया ? सम्यग्ज्ञानी सरलता से सहजपने हठ बिना, आग्रह बिना, कष्ट बिना स्वभाव में शुद्ध चैतन्य में एकाग्र होकर सरलता से, स्वभावपने दु:ख का अथवा कर्म का नाश करते हैं। समझ में आया ?

'सहज' शब्द है। सहज अर्थात् सरलपने। सरलपने अर्थात् आत्मा के ज्ञान में आनन्द करते कष्ट सहना पडे - ऐसा नहीं। कष्ट सहना पडे, वह तो आर्तध्यान हुआ। अरे... ! यह कष्ट आया। वह तो आर्तध्यन है, वह धर्म नहीं; वह तो पापबंध का कारण है। ज्ञानस्वभाव शुद्ध चैतन्य की अंतर में दृष्टि से एकाग्र होकर सहजपने शांति के वेदन द्वारा पूर्व के अनन्त भव के कर्मों को नाश कर देते हैं। समझ में आया ? कहो, समझ में आता है या नहीं ?

मुमुक्षु :- अज्ञानी की आँख खोलते हैं।

उत्तर :- बापू ! आत्मा का ज्ञान कर, इसके बिना तेरे कर्म नहीं खिरेंगे, ऐसा कहते हैं। आहा..हा... ! भाई ! भगवान ! तू जाग। तेरी जागृत अवस्था कर, प्रभु ! तेरी अन्तर की जागृत अवस्था बिना क्रियाकांड में तुझे कुछ लाभ नहीं होगा। आहा..हा... ! समझ में आया ?

'**(मुनिव्रत)**...' देखो ! आत्मज्ञान बिना, सम्यग्दर्शन बिना, आत्मा के निर्विकल्प राग रहित के अनुभव बिना '**मुनियों के महाव्रतों को धारण करके**...' अनन्तबार महाव्रत धारण किये। वह तो पुण्य, राग है, विकल्प है, पुण्यबन्ध भाव है। आहा..! देखो ! ये 'दौलतरामजी' गृहस्थाश्रम में रहने पर भी सत्य वस्तु को प्रसिद्ध करते हैं, जाहिर करते हैं। भाई ! आत्मा अन्दर रागरहित पुण्यरहित (है ऐसा) ज्ञान (किये) बिना महाव्रत अनन्त बार धारण किये। समझ में आया ? एकदम आवेश में आकर मुनिपना ले लिया, पंच महाव्रत लिये और पंच महाव्रत में अठ्ठाईस मूलगुण भी निरतिचार पाले, परन्तु वह तो राग है। आत्मा उससे पार है, उसका ज्ञान अन्दर नहीं हुआ। समझ में आया ?

भगवान आत्मा...! विकल्प पुण्य-पाप, व्रतादि का विकल्प तो पुण्य है। हिंसा, जूठ का भाव तो पाप है। दोनों से (भिन्न होकर) आत्मा का अन्तर में ज्ञान का ज्ञान करना, आत्मा का ज्ञान करना, आत्मा के स्वसन्मुख होकर अपनी एकाग्रता करना, ऐसे ज्ञान से अनन्त कर्म झर जाते हैं। ऐसे ज्ञान बिना अनन्तबार मुनिव्रत धारण किये। नग्नपना मुनिव्रत, हाँ ! अनन्त बार नग्नपना धारण किया, पंच महाव्रत अठ्ठाईस मूलगुण भी अनन्त बार (धारण किये)। उस ओर दृष्टान्त दिया है न ? एक सफेद शरीर किया है बाद में काला-काला करके उसकी परछाई की है। है या नहीं ? कहाँ है ? ये नहीं है मुनि ? देखो ना यह मुनि। यह एक (शरीर) और ऐसे-आसे अनन्त शरीर किये। देखो न, शरीर... शरीर... शरीर... शरीर... है या नहीं ? उसमें है ? एक, दो, तीन, चार इतने तो लिये हैं (ऐसे) अनन्त ले लेना।

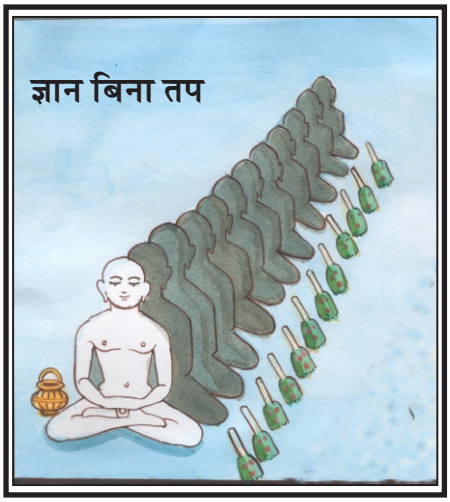

मुमुक्षु :- अंधेरा है।

उत्तर :- वह अंधेरा नहीं है। शरीर, शरीर बनाया है। एक शरीर, दो शरीर, तीन शरीर ऐसे

अनन्त शरीर, मुनिव्रत लेकर अनन्त शरीर धारण किये। अनन्त बार मुनिपना (लिया)। है न ? देखो ! मोरपींछी भी है, यहाँ कमण्डल भी है – ऐसा अनन्त बार हुआ, लेकिन विकल्प का कर्ता मैं नहीं, देह की क्रिया का मैं करनेवाला नहीं। मैं तो चिदानन्द ज्ञानज्योति आनन्द हूँ, ऐसे सम्यक्ज्ञान बिना उसमें कोई लाभ हुआ नहीं। है या नहीं ? पुस्तक तो साथ में है। यहाँ का नहीं बनाया है, चित्र तो पहले से बने हैं। समझ में आया ?

'**मुनियों के महाव्रतों को धारण करके अनन्तबार...**' देखो ! एक बार नहीं। हजारों रानियों का त्याग कर दिया, अरबों रूपिये छोड़ दिए, बारह-बारह महिने के उपवास अनन्त बार किये परन्तु आत्मज्ञान नहीं किया। आत्मज्ञान बिना वह सब उसका संसार में गया। परिभ्रमण रहा, जन्म-मरण का नाश हुआ नहीं और गृहस्थाश्रम में रहे हो, हजारो रानियों का त्याग न हो, राग हो फिर भी रागरहित आत्मा का ज्ञान करने से अल्पकाल में वह कर्म का नाश करके, चारित्र लेकर मुक्ति को पायेगा। समझ में आया ?

'**अनन्तबार नववें ग्रैवेयक...**' नव ग्रैवेयक समझते हो ? अन्त में है। ये चौदह ब्रह्मांड-चौदहराजु (लोक) है न ? वह पुरुष के आकार से है। जैसा पुरुष है न ? पुरुष, उसके अनुसार आकार है। खडा पुरुष होता है, उसमें गला है, ग्रीव... ग्रीवा... ग्रीवा के स्थानमें नौ ग्रैवेयक हैं। देव की पृथिवी है। नव ग्रैवेयक यहाँ पर है। वहाँ प्रत्येक जीव अनन्तबार गया है। साधु होकर, दिगम्बर साधु होकर अनन्त बार गया; मिथ्यादृष्टि होकर, आत्मज्ञान पाये बिना (वहाँ गया)। आत्मज्ञान पाकर स्वर्ग में जाये वह तो अल्पकाल में मुक्ति पाये। आत्मज्ञान बिना, सम्यग्दर्शन बिना ऐसा मुनिव्रत अनन्तबार धारण किया। नौवीं ग्रैवेयक में उत्पन्न हुआ।

'**परन्तु (निज आतम) अपनसे आत्मा के ज्ञान बिना...**' देखो ! है न ? '**पै निज आतमज्ञान बिना...**' इतना किया लेकिन आत्मा का ज्ञान नहीं किया।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- धूल में हो ? ज्ञान तो अन्तर में है। बाह्य क्रियाकांड से मिलता है ?

आत्मा, ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञान से ही वेदन में आता है, जानने में आता है। ऐसा ज्ञान, अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक गया लेकिन ऐसा ज्ञान किया नहीं। शास्त्र का ज्ञान किया। नव पूर्व पढ़

लिया, उसमें क्या आया ? समझ में आया ? दो बात कहते हैं। एक तो, अपने ज्ञान बिना। समझे ? शास्त्र का ज्ञान किया, ऐसा कहते हैं; और व्रतादि किये, दोनों बात ली है। भाई ! पंच महाव्रत, अठ्ठाईस मूलगुण भी लिये और शास्त्र का ज्ञान भी किया, दोनों बात आ गई।

'**मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजावे**' आत्मज्ञान बिन व्रत भी अनन्त बार लिये और निज आत्मज्ञान बिना शास्त्र का ज्ञान भी किया। समझ में आया ? आत्मज्ञान क्या करे ? शास्त्र तो कहते हैं कि, तेरे अन्दर देख। अन्तर में अनुभव कर, तेरा आत्मा अन्दर भगवान परमात्मा बिराजता है। तेरे स्वरूप में नजर डाल, उसमें से शांति मिले, उसका नाम ज्ञान कहते हैं। समझ में आया ?

'**(निज आतम) अपने आत्मा के ज्ञान बिना...**' दोनों बात कही है। व्रत भी लिये और आत्मा के ज्ञान बिना शास्त्र का ज्ञान भी किया। समझ में आया ? 'श्रीमद्' नहीं कहते ? 'श्रीमद्' कहते हैं कि नहीं ? 'श्रीमद् राजचंद्र,' सुना है न ?

यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग बिराग अथाग लह्यो;
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो।
जप भेद जपै तप त्योंहि तपे, उरसेंहि उदासी लही सबपें।
सब शास्त्रनके नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये;
वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

'**यम नियम संजम...**' यम (अर्थात्) पंच महाव्रत। नियम-अभिग्रह लिया। संयम लिया।

यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग बिराग अथाग लह्यो;
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो।

क्या है उसमें ? आत्मा क्या चीज है, ऐसे अंतरबोध बिना... कहते हैं,

वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

अब क्यों न बिचारत है मनसें, कछु और रहा उन साधनसे ?

बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे, मुख आगल हैं कह बात कहे ?

समझ में आया ? २४ वर्ष की उम्र। २४ वर्ष की उम्र में भान हुआ (था)। गृहस्थाश्रम में थे। 'श्रीमद् राजचंद्र' को 'मुंबई' में लाखो रूपये का मोती का व्यापार था। समझ में आया ? लाखो रुपये का मोती का व्यापार। अन्दर में (भान है कि) मेरी चीज़ नहीं मेरी चीज़ तो मैं आत्मा हूँ, आनन्द हूँ। जैसे नारियेल में गोटा भिन्न रहता है... नारियेल होता है न ? नारियेल में टोपरे का गोटा भिन्न (है)। ऐसे सम्यग्ज्ञानी का आत्मा, राग और शरीरादि की क्रिया से अन्दर में भिन्न रहता है। आहा..हा... ! भाई !

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- आत्मा बिना ज्ञान नहीं होता। देवानुप्रिया ! ऐसा कहते हैं कि, तूने ये सब तो किया, अनन्तबार साधन किये। '**सब शास्त्रनके नय धारि हिये,...**' शास्त्र पढ़े तो किसके पास पढे ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- बिन सद्गुरु अर्थात् ? उसका अर्थ क्या ? वे कहते हैं कि, विकल्प रहित तेरा आत्मा है ऐसा तूने बोध नहीं किया। समझ में आया ? ठीक पकडा। उसका अर्थ ये है। भगवान ! तेरी चीज़ तो अन्दर में अनाकुल आनंदमय प्रभु है न, भाई ! राग विकल्प दया, दान आदि का, हमें सुनने का विकल्प उठता है, वह विकल्प भी तेरी चीज़ तो अन्दर में अनाकुल आनंदमय प्रभु है न, भाई ! ऐसा उसको सुनाया तो समझे तो गुरुगम से समझा - ऐसा कहने में आता है। 'समझे नहीं गुरु बिना, ये ही अनादि स्थित।' ठीक !

'**पावे नहि गुरुगम बिना, एही अनादि स्थित।**' सत्ज्ञानी बिना सच्चा तत्त्व क्या है वह अन्तर में समझ में आता नहीं। अब ठीक न ? आहा..हा... ! अरे.. ! भगवान ! उसे मिले थे लेकिन उसे भान नहीं था। ग्यारह अंग में क्या नहीं आता ? ग्यारह अंग पढा। ग्यारह (अंग में) कितना है ? एक शास्त्र-एक आचारांग, एक आचारांग सूत्र है, उसमें अठारह हजार पद हैं।

एक पद में इक्यावन करोड श्लोक हैं। ऐसा कंठस्थ किया। ऐसे एक आचारांग से डबल सूयगडांग, उससे डबल ठाणांग (है)। डबल कहते हैं न ? दूना... दूगना। ऐसे ग्यारह अंग पढ़ डाले, पढ़ डाले। पढ़ा लेकिन क्या कहते हैं, अन्तर में आत्मज्ञान का पता लिया नहीं। भाई !

देखो ! भाषा क्या है ? देखो ! निज आत्मज्ञान, ऐसी भाषा है न ? '**पै निज आतमज्ञान**' ऐसा शब्द है। एक-एक शब्द में बहुत मर्म भरा है। निज आत्मज्ञान। भगवान का ज्ञान, ऐसा नहीं। गुरु का ऐसा नहीं, शास्त्र का ऐसा नहीं। समझ में आया ? '**पै...**' परंतु एक '**निज आतमज्ञान बिना...**' भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु, चैतन्यसूर्य भगवान आत्मा है, ऐसा अन्तर में अंतर्मुख होकर आत्मा का ज्ञान किया नहीं। आहा..हा... ! तो '**सुख लेश न पायौ।**' आत्मा का आनन्द, सम्यग्ज्ञान बिना आनन्द जो अतीन्द्रिय आनंद आना चाहिए, वह पाया नहीं। उसका अर्थ क्या किया ? कि, पंच महाव्रतादि अनन्त बार लिया लेकिन दुःख भोगा, ऐसा कहते हैं। भाई ! ओ..हो..हो... ! थोड़े में कितना कहते हैं !!

लेश सुख न पाया। पंच महाव्रत पाले, ग्यारह अंग पढ़े तो सुख नहीं ? नहीं। क्योंकि परलक्ष्यी विकल्प है। आत्मा का नहीं (है), दुःख है, ऐसा कहा। ग्यारह अंग, नौ पूर्व का पढ़ना भी दुःख है। आत्मा के अंतरज्ञान बिना वह दुःख है। पंच महाव्रतादि, अठ्ठाईस मूलगुण भी दुःख है। आहा..हा... ! समझ में आया ? उसमें है या नहीं ? भैया ! निकालो। '**पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ।**' ऐसा है या नहीं ? सुख नहीं पाया तो क्या पाया ? दुःख। आहा..हा... ! वहाँ दुःख ही है। पंच महाव्रत, अठ्ठाईस मूलगुण का विकल्प उठता है वह दुःख है, राग है। ग्यारह अंग की पढाई परलक्ष्यी दुःख है, ऐसा कहते हैं। 'दौलतरामजी' ने श्लोक में ऐसा भर दिया है। समझ में आया ?

'**पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ।**' अंश भी सुख नहीं (पाया) उसका अर्थ, मुनिव्रत लिया लेकिन अंश भी सुख नहीं। दुःख लिया, उसे दुःख का अनुभव था। आहा..हा... ! क्योंकि वह शुभराग, पुण्य की क्रिया, वह शुभभाव दुःख है, ऐसा कहते हैं। दौलत भरी है न ! यह 'दौलतरामजी' हैं। समझ में आया ? एक श्लोक में बहुत भरा है, हाँ !

ज्ञान बिना लेश, है न ? '**किंचित्मात्र सुख प्राप्त न कर सका।**' थोड़ा सुख भी (नहीं), एक अंश भी सुख हो तो खलास हो गया। सम्यग्ज्ञान होकर अंश सुख हो वह पूर्ण सुख की प्राप्ति करेगा ही करेगा। चंद्र की दूज उगती है, वह पूर्णिमा होगी ही होगी। यहाँ तो दु:ख लिया, ऐसा कहते हैं। आहा..हा... ! भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द के ज्ञान बिना तेरा पंच महाव्रत का मुनिपना भी दु:खरूप है। समझ में आया ? ऐसा अनन्त बार किया लेकिन अंतर में आत्मज्ञान की दृष्टि और अनुभव में सुख है, वह कभी प्रकट किया नहीं, तो उसका परिभ्रमण कभी मिटा नहीं। (विसेष कहेंगे...)

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❁

''आत्मा ज्ञानमात्र है'' ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि आत्मा शरीररुप नहीं, वाणीरूप नहीं, पुण्यपापरुप नहीं और एक समयकी पर्याय मात्र भी नहीं है । ''आत्मा ज्ञानमात्र है'' यह कहनेका अर्थ है कि आत्मा ज्ञान-दर्शन, अकार्य-कारण, भावादि अनन्त शक्तिमय है । प्रभु ! तेरे घरकी क्या बात है ! तेरेमें अनन्त शक्तियाँ भरी हुयी हैं और एक-एक शक्ति अनन्त सामर्थयवान है, प्रत्येक शक्ति अनन्तगुणोंमें व्याप्त है. प्रत्येक शक्तिमें अन्य अनन्त शक्तिका रूप है, प्रत्येक शक्ति अन्य अनन्त शक्तियोमें निमित्त है। ऐसी प्रत्येक शक्तिमें अनन्त पर्यायें हैं , वे पर्याये क्रमसे परिणमित होनेसे क्रमवर्ती हैं, तथा अनन्त शक्तियाँ एक साथ रहनेके कारण वे अक्रमवर्ती हैं । ऐसे अक्रमवर्ती और क्रमवर्ती गुण-पर्यायोंका पिण्ड - वह आत्मद्रव्य है । द्रव्य शुद्ध है, गुण भी शुद्ध है तथा उन पर दृष्टि करनेसे परिणमन भी शुद्ध ही होता है ।

(परमागमसार-१६९)